ISSN: 0024-595X

लोकतन्त्र समीक्षा

खण्ड 45 अंक 3-4 जुलाई - दिसम्बर 2013

विषय सूची

खण्ड 45 अंक 3–4 — जुलाई - दिसम्बर 2013

लेख

1. भारत में नये राज्यों के गठन की राजनीति
रविन्द्र सिंह
मंगलदेव — 127

2. भारतीय संविधान और उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों में प्रयोग की जाने वाली भाषा : एक आलोचनात्मक अवलोकन
राकेश कुमार सिंह — 136

3. राजस्थान लोक सेवा गारण्टी अधिनियम : प्रावधान एवं चुनौतियां
जनक सिंह मीना — 146

4. स्थानीय राजनीति में दलित वर्ग की भागीदारी
ए.के. उपाध्याय — 158

5. भारत के संसदीय लोकतंत्र में विपक्ष की भूमिका की दशा व दिशा
अरूणेश कुमार यादव — 170

6. महिला सशक्तिकरण : एक विधिक परिप्रेक्ष्य
अलका भारती — 177

7. भारत में संसदीय लोकतंत्र का क्षरण
रामबहादुर वर्मा — 185

8. स्वामी विवेकानन्द का सामाजिक न्याय
अरूण कुमार तिवारी — 191

9. भूमंडलीकरण और भारतीय महिलाएँ
युगल झा — 195

10. रबर स्टाम्प नहीं है भारतीय राष्ट्रपति
औमप्रकाश पंवार — 203

11. राजनीति में महिलाओं की सहभागिता
शशी प्रभा — 212

12. मंत्रिमंडल में सामूहिक उत्तरदायित्व
फूला देवी 221

13. भारत में महिला आन्दोलन के नए दायित्व
जयकुमार मिश्र 227

14. सामाजिक उन्नयन में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के मानवाधिकार शिक्षा विषयक साम्प्रतिक प्रयास
ऋतेश त्रिपाठी 234

15. भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति
मुकेश देवी 240

भारत में महिला आन्दोलन के नए दायित्व

जयकुमार मिश्र *

भारत में महिला आन्दोलन की अब तक की यह बहुत बड़ी सफलता कही जा सकती है कि इसने एक वैचारिक उत्तेजना उत्पन्न कर दी है और अकादमिक क्षेत्र में एक महिला उन्मुखी विचारधारा एवं चिन्तन का सूत्रपात किया है, जिससे महिलाओं के प्रति समाज में एक संवेगात्मक-संवेदनात्मक अनुभूति का प्रसार हो सका है। आज सम्पूर्ण भारतीय परिदृश्य एक प्रगतिशील संक्रमण के क्रम से गुजर रहा है, ऐसी दशा में वर्तमान महिला आन्दोलन को अपने सिद्धान्त एवं तर्क के साथ ही व्यावहारिक धरातल पर बहुत कुछ नया प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। आज 'महिला' को एक 'वर्ग' मानकर केवल उसके सशक्तिकरण पर बल देने की आवश्यकता नहीं है, वरन् महिलाओं के भीतर जो विभिन्न स्तर हैं (जैसे- ग्रामीण और शहरी महिलाएं, कार्यशील और घरेलू महिलाएं, हिन्दू और मुस्लिम महिलाएं आदि) उसके परिप्रेक्ष्य में चिन्तन करने की आवश्यकता है। इन सभी स्तरों को साथ रखते हुए उनकी समस्याओं का तर्कसंगत एवं सर्वमान्य समाधान ढूँढ़ना भारत में महिला आन्दोलन के नए महत्वपूर्ण दायित्व हैं।

भारत जैसे विकासशील और परम्परागत सामाजिक संरचना वाले देश में महिला सशक्तिकरण का प्रारम्भ पहले समाज में होना चाहिए था, तत्पश्चात राजनीति में उनके प्रवेश के लिए व्यवस्था की जानी चाहिए थी, लेकिन भारत में इसके विपरीत हमारे नीति-निर्माताओं ने राजनीतिक पहल पहले करते हुए 73वें और 74वें संविधान संशोधन के माध्यम से स्थानीय निकायों में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण दे दिया। फलतः समाज में महिलाओं की दशा में उल्लेखनीय सुधार किए बिना ही राजनीति ने महिलाओं को सहभागी बना लिया। आज 73वें और 74वें संविधान संशोधन के पारित होने के बाद लगभग दो दशक बीतने वाले हैं, परिस्थितियाँ बहुत अधिक सन्तोषाजनक नहीं हैं, क्योंकि महिलाओं के प्रति हमारी सोच में कोई उल्लेखनीय और रचनात्मक परिवर्तन नहीं हुआ है।

---

* अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, राजा हरपाल सिंह, पी०जी० कालेज, सिंगरामऊ, जौनपुर, (उ०प्र०)

कहीं-कहीं तो ऐसी स्थितियां हैं कि पुरुषों ने महिलाओं के राजनीतिक कार्यों को 'हथिया' लिया है, 'प्रधान पति' की अवधारणा इसीलिए सामने आयी है। इससे एक संशय उठता है कि यदि संसद में भी 33 प्रतिशत महिला आरक्षण का प्रावधान लागू होता है तो कहीं 'सांसद पति' के रूप में वहाँ भी पुरुष वर्चस्व न उठ खड़ा हो, इससे तो महिला आरक्षण का सम्पूर्ण सन्दर्भ और प्रसंग ही लक्ष्य से भटक जाएगा।

वस्तुतः कोई भी कानून बनाने के पीछे जो भावनाएं होती हैं, वह अत्यन्त पवित्र होती हैं और उनका पालन करना या सम्मान करना सभ्य समाज का दायित्व होता है, केवल कानून बना देने से काम नहीं चल सकता है, क्योंकि बहुत से ऐसे कानून हैं, जो बने हुए हैं लेकिन उनका पालन प्रायः लोग नहीं करते, जैसे सार्वजनिक स्थानों पर धूम्रपान निषेध का कानून होने पर भी लोग धूम्रपान करते हैं। दूसरी ओर अध्यापक को प्रणाम करने के लिए विवश करने वाला कोई कानून न होने पर भी लोग अध्यापक को प्रणाम करते हैं। अतः कानूनों को सामाजिक स्वीकृति मिलनी चाहिए और इसका पालन संस्कार में शामिल होना चाहिए। पंचायतों में महिलाओं को आरक्षण देने के बाद भी उनका काम-काज उनके 'संरक्षक' (पति या पुत्र या पिता) द्वारा देखे जाने की घटना भी इसी राजनीतिक संस्कारहीनता का परिणाम है, जिसे सामाजिक चेतना द्वारा दूर किया जाना चाहिए। राजनीति में जिन महिलाओं को अब तक अवसर मिला है उनमें से अधिकांश की पृष्ठभूमि राजनीतिक है, बहुत कम ऐसी महिलाएं हैं, जो अति सामान्य धरातल से ऊपर उठकर सांसद या मन्त्री पद तक पहुँच सकी हैं। एक आशंका यह भी है कि यदि संसद में महिला आरक्षण लागू होता है तो कहीं वह राजनीतिक रूप से अभिजात्य वर्ग की महिलाओं के लिए ही आरक्षित एवं सुरक्षित न हो जाये।

भारत में यह तथ्य आसानी से देखा जा सकता है कि नीति-निर्माण और निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में सहभागी बनाने मात्र से ही महिला-जगत का कायाकल्प नहीं हो सकता, क्योंकि भारत में विभिन्न दलों के महिला राजनीतिज्ञों को भी महिलाओं से जुड़े सरोकारों के प्रति कोई 'विशेष लगाव' नहीं है।[1] संसद में महिला आरक्षण विधेयक को पारित होने के लिए भी महिला सांसद या विधायक कोई दबाव डालते प्रतीत नहीं हो रही हैं। दलीय प्रतिबद्धता (जो कि संसदीय शासन प्रणाली का अनिवार्य लक्षण बन गयी है) के कारण महिला विधायक- सांसद महिला आन्दोलन और महिलाओं की समस्याओं को कोई स्वर नहीं दे पा रही हैं।[2] इस प्रकार की दलीय प्रतिबद्धता संसद में महिला आरक्षण मिल जाने

---

1 मायावती, जयललिता, ममता बनर्जी आदि ने महिलाओं के लिए बहुत कुछ नहीं किया है

2 राजस्थान की भँवरी देवी को न्याय दिलाने के लिए महिला राजनीतिज्ञों ने संसद या विधानसभा में क्या किया?

के बाद भी जारी रहेगी। फलतः महिलाओं के कल्याण का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाएगा। यदि हम भारत में उन आँकड़ों पर ध्यान दें जो यह बताते हैं कि संसद में महिलाओं की संख्या क्या रही है, संसद की बैठकों में उनकी उपस्थिति का प्रतिशत कितना रहा है, उनके द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्नों की संख्या कितनी रही है और उन प्रश्नों में महिलाओं की समस्याओं से सम्बन्धित प्रश्न कितने रहे हैं तो बात स्पष्ट हो जाएगी कि महिला सांसद (और महिला विधायक भी) दलीय प्रतिबद्धताओं से अधिक प्रेरित होती हैं। उन्होंने महिलाओं से जुड़े मुद्दों को भी उतनी गहराई और गम्भीरता से नही उठाया, जितनी कि उनसे अपेक्षा थी। जितनी संवेदना और सहानुभूति अल्पसंख्यकों की समस्याओं के प्रति राजनीतिक दलों में दिखाई देती है, उतना महिलाओं से जुड़े मुद्दों के प्रति दिखाई नहीं देती जबकि महिलाएं 'आधे भारत' का निर्माण करती हैं। वस्तुतः महिलाएं न तो राजनीतिक रूप से एक 'संगठित वर्ग' हैं और न ही राजनीतिक व्यवस्था में एक 'दबाव समूह' के रूप में प्रभावी। वस्तुतः भारत में जो राजनीतिक नेतृत्व है, वह महिलाओं को केवल राजनीति के एक मोहरे (वोट बैंक) के रूप में देखता है। राजनीतिक दलों के पास (ऐसे भी राजनीतिक दल जिनका नेतृत्व महिलाओं के पास है) महिलाओं के हितों को उठाने के लिए कोई आवाज या शब्द ही नहीं होता और न ही उन्हें महिलाओं के दीर्घकालीन हितों की ही कोई चिन्ता है। महिलाओं के प्रति व्यक्तिगत या कभी-कभी सामूहिक हिंसा स्वतन्त्रता के 64 वर्ष बाद भी रोकी नहीं जा सकी है। राजनीतिक दल और राजनीतिज्ञ न तो इस सत्य को समझ रहे हैं और न ही समझने के लिए तैयार हैं कि महिलाओं को समानता दिलाने तथा सामाजिक प्रगति की मुख्य धारा में लाने के लिए व्यवस्थापिका द्वारा 'अधिक सुरक्षात्मक विधायन' तथा कार्यपालिका द्वारा उनका 'प्रभावी क्रियान्वयन' महती आवश्यकता है।

पंचायतों में जो 'प्रधान पति' का व्यंग्य सूचक लेकिन यथार्थवादी स्वरूप उभरकर सामने आया है, उसे महिलाओं के भीतर 'क्षमता-निर्माण के अभाव' से जोड़कर देखने की आवश्यकता है, केवल आरक्षण देने से काम नहीं चलेगा। भारत के संविधान में तो 1950 से ही अनुसूचित जाति एवं जनजाति आदि के लिए आरक्षण का प्रावधान लागू है, लेकिन उनकी दशाओं में आधारभूत स्तर पर कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हो सका है। इसे देखते हुए महिलाओं को आरक्षण मात्र देकर उन्हें मुख्य धारा में शामिल करने की बात सोचना सार्थक प्रतीत नहीं होता। भारत में आज महिलाओं को केवल अधिकार प्रदान करके सशक्त नहीं किया जा सकता, उन्हें सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक रूप से 'सक्षम और आत्मनिर्भर' बनाने की आवश्यकता है। उन्हें उनके 'पहचान के संकट' से बाहर निकालना होगा तथा अधिकारों के क्रियान्वयन के प्रति जागरूक बनाना होगा। इसके लिए उनके शिक्षा एवं अर्थ सम्बन्धी हितों के प्रति नेतृत्वकर्त्ताओं को संवेदनशील होने की

आवश्यकता है। भारत में महिलाओं के सन्दर्भ में नोबेल पुरस्कार विजेता जोसेफ स्टिग्लिट्ज द्वारा प्रतिपादित 'ट्रिकल डाउन थियरी'[3] से काम नहीं चल सकता, क्योंकि इससे महिलाओं के बीच असमानता बढ़ जाएगी। जो महिलाएं पहले लाभ उठा लेंगी, वे तब तक विकास के उच्च्व स्तर तक पहुँच जाएंगी जब तक कि इसका लाभ छनते-छनते निचले स्तर तक पहुँचेगा और परिणामतः महिलाओं के बीच पाए जाने वाले स्तर सम्बन्धी भेद बने रहेंगे, कम नहीं होंगे।

यह एक प्रमाणित तथ्य है कि युद्धों एवं संघर्षों के साथ-साथ विकास के नकारात्मक पहलू का भी सर्वाधिक नुकसान महिलाओं को ही उठाना पड़ता है लेकिन इस पर कोई विशेष चर्चा न तो राजनीतिक जगत में होती है और न ही अकादमिक क्षेत्र में। घरेलू उत्पादन में महिलाओं के योगदान का प्रतिशत निकाला जाये तो एक आशाजनक चित्र उभरकर सामने आता है, इस प्रतिशत को निरन्तर बढ़ाने की आवश्यकता है। इसकी सहायता से हम महिलाओं की प्रगति तथा राष्ट्रीय विकास में उनकी सहभागिता के नए आँकड़े प्रस्तुत कर उनकी प्रगति के लिए एक नया धरातल तैयार कर सकते हैं।

आज भारत में 'ज्ञान आधारित समाज' (नॉलेज सोसायटी) पर बल दिया जा रहा है तथा एक 'तर्कशील भारतीय' (ऑरगूमेन्टेटिव इण्डियन) बनने के लिए प्रेरित किया जा रहा है ऐसी दशाओं में महिलाओं को प्रगति की मुख्य धारा में शामिल किए बिना उन लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता, जो भारत ने अपने 'सहस्त्राब्दी घोषणापत्र' में स्वीकार किए हैं। महिलाओं के विकास के बिना 'सतत विकास' भी सम्भव नहीं है। आज 'समावेशी लोकतन्त्र' की बात की जा रही है, इससे महिलाओं को तथा समाज के उन लोगों को लाभ मिलेगा, जो अब तक लोकतन्त्र की परिधि से बाहर रहे हैं।

महिलाओं को मुख्यधारा में लाने के लिए 'सूचना के अधिकार' तथा 'गुड गवर्नेंस' के मानदण्डों का प्रयोग भी एक साधन के रूप में किया जा सकता है। सूचना के अधिकार ने अनेक महिलाओं को उनकी परम्परागत समस्याओं से छुटकारा दिलाया है, इसके साथ जनहित याचिकाओं ने भी महिलाओं का शोषण रोकने में उनकी मदद की है।[4] सूचना का अधिकार तथा जनहित याचिकाओं का प्रयोग करके बुद्धिजीवी वर्ग महिलाओं को

---

[3] इस सिद्धान्त के अनुसार माना जाता है कि विकास का लाभ पहले समाज के उच्च्व वर्ग को मिलता है, नीचे के लोगों में वह छन-छनकर धीरे-धीरे पहुँचता है

[4] जैसे कपिला हिंगोरानी द्वारा दायर की गयी भारत की प्रारम्भिक जनहित याचिका ने जेलों में रह रही महिला कैदियों को बेहतर सुविधाएं देने के लिए भारत सरकार को बाध्य किया, इसी प्रकार अमिया राव द्वारा दायर की गयी जनहित याचिका ने एशियाई खेलों की तैयारी में लगी महिला श्रमिकों का आर्थिक शोषण रोकने में मदद की थी

उनकेशोषण से बाहर निकालकर एक नया परिवेश दे सकता है। गुड गवर्नेंस का सिद्धान्त सरकार को महिलाओं के लिए एक बेहतर परिदृश्य निर्मित करने में सहायता देगा। इन सबके सहारे महिलाओं की सामूहिक समस्याओं का एक अच्छा समाधान प्रस्तुत किया जा सकता है। भारत में महिलाओं के प्रति हिंसा को रोकने के लिए हमें उनके प्रति संवेदनशील बनना होगा, उनसे जुड़े मामलों पर त्वरित कार्यवाही करने की आवश्यकता है, इसके लिए महिला थानों की संख्या बढ़ानी होगी तथा साथ ही अधिक संख्या में महिला न्यायाधीशों तथा अधिवक्ताओं की नियुक्ति करनी होगी। भारतीय परिवेश में महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त एवं सक्षम बनाने की आवश्यकता है, इसके लिए महिलाओं को व्यावसायिक गतिविधियों में शामिल करने के लिए प्रेरित करना होगा, उन्हें बैंकों के द्वारा ऋण प्राप्त करने की आसान सुविधाएं भी देनी होंगी। ध्यान रहे बांग्लादेश, ब्राजील, घाना तथा दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों में महिलाओं को बैंक द्वारा ऋण देने पर उनके लौटाने की प्रतिशतता 95 से 98 प्रतिशत तक है। यदि हम अर्थव्यवस्था के तीनों क्षेत्रों/स्तरों पर ध्यान दें तो पाएंगे कि भारत में अर्थव्यवस्था के प्राथमिक क्षेत्र (कृषि, मत्स्य पालन आदि) में महिलाओं की सहभागिता किसी भी दशा में पुरुषों से कम नहीं है लेकिन द्वितीयक क्षेत्र (उद्योग-धन्धे) तथा तृतीयक क्षेत्र (सेवा-क्षेत्र) में उनकी सहभागिता कम रही है, जो धीरे-धीरे बढ़ रही है। राजनीतिक अधिकार मिल जाने के बाद भी आज तक भारतीय समाज संसाधनों के निर्माण तथा उपभोग में महिलाओं को अपेक्षित सहभागिता नहीं दे पाया है।[5] यदि हम महिलाओं के शिक्षा, स्वास्थ्य, गरीबी, बेरोजगारी, कुपोषण आदि के सन्दर्भ में अधिक खर्च करने लगें तो यह निश्चय ही हमारी अर्थव्यवस्था की गति को तीव्र करके हमें आगे ले जाएगा। हम अपने 'आधे समाज' को छोड़कर सुखी नहीं हो सकते क्योंकि स्त्री-जगत् का विकास ही भारत के भविष्य का निर्धारक है। यह सब 'राज्य' के नए दायित्व हैं, जिससे वह मुँह नहीं मोड़ सकता, क्योंकि यदि भारत को सच्चे अर्थों में लोकतान्त्रिक-लोककल्याणकारी राज्य बनाना है तो उपरोक्त वर्णित उपायों को क्रियान्वित करने के लिए मार्ग का निर्माण करना ही होगा।

भारत में महिला आन्दोलन को आज एक व्यापक मानवीय परिप्रेक्ष्य देने की आवश्यकता है। इसके लिए महिला आन्दोलन के रणनीतिकारों तथा समर्थकों को यह ध्यान रखना होगा कि बहुत सारे पुरुषों, शारीरिक-मानसिक विकलांगों तथा अनाथ एवं बेसहारा बच्चों की दशा भी उनके जैसी ही है, वे भी समाज की परिधि पर हैं तथा मुख्य धारा में आने के लिए अथक संघर्ष कर रहे हैं, यदि इस उपेक्षित/वंचित वर्ग के हितों के लिए अर्थात् उनके

---

[5] इसी कारण जेण्डर डेवलपमेंट इन्डेक्स में भारत का 155 देशों में 114वां स्थान है तथा मानव विकास सूचकांक में भी हम 134वें स्थान पर (2011) हैं

सशक्तिकरण के लिए भी महिला आन्दोलन आवाज उठाए तो उसका न केवल आधार व्यापक होगा, वरन् वह अधिक समर्थन एवं सहानुभूति भी एकत्र कर सकेगा। इससे वह एक व्यापक मानवीय आन्दोलन का स्वरूप धारण कर नीति-निर्माताओं को अधिक बेहतर ढंग से प्रभावित-अनुकूलित कर सकेगा। भारत के सन्दर्भ में लेस्बियन के अधिकारों या 'होमो सेक्सुअल लाईफ' और 'लिविंग इन रिलेशनशिप' जैसे विचार महिला आन्दोलन को उनके सकारात्मक एवं प्रगतिशील लक्ष्यों से भटका देंगे, इससे बचने की आवश्यकता है।

आठवीं सदी से लेकर 1950 ई० तक का भारत का इतिहास महिलाओं की सामाजिक सहभागिता में निरन्तर ह्रास का इतिहास है। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के लिए यह अत्यन्त गर्व तथा भारतीय महिलाओं के लिए यह गौरव की बात है[6] कि भारत में महिलाओं को अपनी संवैधानिक व्यवस्था में शामिल होने के लिए कभी भी कोई आन्दोलन नहीं चलाना पड़ा, उन्हें वे सभी कानूनी एवं संवैधानिक अधिकार मिल गए, जो उन्हें संविधान द्वारा प्रदत्त थे। चूँकि भारत की सामाजिक संरचना अभी भी परम्पराओं एवं रूढ़ियों से ग्रस्त है और हमारी संवैधानिक संस्थाएं नवीन हैं अतः यह माना जाना चाहिए कि समाज द्वारा आधुनिकता को अंगीकार करने में समय लग सकता है, इसे केवल 'क्रमिक परिवर्तन' द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। भारतीय महिला आन्दोलन को हमारी बहुआयामी सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना और पारिवारिक दायित्वों को ध्यान में रखते हुए आकस्मिक एवं क्रान्तिकारी परिवर्तन करने की व्यावहारिक पहल न करके वैचारिक-मानसिक परिवर्तन की गति को धीरे-धीरे आगे बढ़ाना होगा। भूमण्डलीकरण के इस युग में नारी को बाजार की वस्तु न बनने देने की प्रतिबद्धता भी महिला आन्दोलन के एजेण्डे में होनी चाहिए। भारत में महिला आन्दोलन को अपने प्राचीन गौरवपूर्ण मूल्यों तथा युग की वर्तमान माँग के बीच समन्वय स्थापित कर रूढ़िगत बन्धनों को तोड़ने की आवश्यकता है, लेकिन ऐसा करते समय भारतीय महिलाओं को ध्यान रखना होगा कि उन्हें जीवन के मार्ग का निर्धारण स्वेच्छा से तो करने का पूरा अधिकार है लेकिन मार्ग निर्धारण में स्वेच्छाचारिता का परिचय न देना उनका कर्त्तव्य भी है। शिमान द बुआ ने 'द सेकेण्ड सेक्स' (1949) में लिखा है कि विवाह महिलाओं के कैरियर में बाधक है लेकिन वह बुआ का निजी अनुभव था, इसे मापदण्ड नहीं बनाया जा सकता। परिवार नारी को एकांगी जीवन से ऊपर उठाकर सामाजिक संस्था में बांधता है। परिवार को तोड़कर या विवाह के बन्धन से इन्कार कर 'लिविंग इन रिलेशनशिप' में बँधने से स्त्री एक वस्तु मात्र

---

6 गर्व एवं गौरव की बात इसलिए हो रही है कि जर्मनी में 1918 ई०, अमेरिका में 1920 ई०, ब्रिटेन में 1929 ई० तथा स्विटजरलैण्ड में 1971 ई० में महिलाओं को मत देने का अधिकार प्राप्त हुआ था, जबकि भारत में स्वतन्त्र होते ही महिलाओं को मताधिकार एवं राजनीतिक पद प्राप्त करने का अधिकार आदि संविधान के द्वारा तुरन्त दे दिया

हो जाएगी और यह वर्तमान में स्वीकार नहीं किया जा सकता। पुरुषों को भी यह बात समझ लेनी चाहिए कि कोई भी महिला शारीरिक रूप से एक निर्बल पुरुष है और कोई भी पुरुष शारीरिक रूप से एक सशक्त महिला, लेकिन मानसिक या बौद्धिक स्तर पर महिला एवं पुरुष दोनों की शक्तियों, सम्भावनाओं तथा सफलताओं में अत्यन्त समानता है।